International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 29-10-2021, Accepted: 15-11-2021, Published: 30-11-2021
Volume 3, Issue 4, 2021, Page No. 12-13

संत व सूफी काव्यधारा में समानता

ज्योत्स्ना आनंद
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध–आलेख का ध्येय मध्यकालीन हिंदी साहित्य की संत एवं सूफी काव्यधारा के मध्य सामंजस्य–सूत्र की प्रगतिशील खोज है । भक्ति संत काव्यधारा का सामजिक अवदान एवं सूफी दर्शन की वर्तमान प्रासंगिकता के बहुआयामी विवेचन को प्रस्तुत करना ही शोध – आलेख का मुख्य उद्देश्य रहा है ।

मूल शब्दः संत, सूफी, दर्शन, धर्म, गुरु, साधक

प्रस्तावना

मध्यकालीन समाज राजनैतिक अव्यवस्था, धार्मिक भेद–भाव, आर्थिक हीनता, सांस्कृतिक पराभव का समाज था। इन्हीं परिस्थितियों से संत और सूफी भारतीय समाज में प्रादुर्भावित हुए। दोनों का ही उदय हिंदू–मुसलमानों में एकता की प्रतिष्ठा और विश्रृंखलित समाज की उच्चता की आकांक्षा के लिए हुआ। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार – "हिंदी साहित्य के निर्माण में सूफी कवियों की जो देन है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।" संतों ने धार्मिक अभिन्नता के प्रतिपादन द्वारा और सूफियों ने दोनों जातियों की सांस्कृतिक एकता द्वारा इसका प्रयास किया। संभवतः इस दिशा में सूफियों को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली। संत व सूफी मतों में कोई पूर्वापर या जनक–जन्य भाव नहीं है। सूफी धर्म का प्रवेश भारत में ईसा की बारहवीं शताब्दी के लगभग हुआ। ईरान व अरब देशों के उपकरणों को लेता हुआ भी यह मत भारतीय वातावरण, धर्म, संस्कृति और साहित्य से प्रभावित हुआ। दूसरी ओर संत मत विशुद्ध भारतीय या पूर्व की नाथ, सिद्ध परंपरा की अगली कड़ी था। इसके प्रायः सभी उपकरण भारतीय ही थे। संत मत पर आंशिक रूप से इस्लाम का भी प्रभाव पड़ा जो कि स्वाभाविक ही था। इसके प्रमाणस्वरूप आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में स्वयं लिखते हैं – "इस परंपरा में मुसलमान कवि ही हुए हैं। केवल एक हिंदू मिला है। सूफी संत के अनुयायी सूरदास नामक एक पंजाबी हिंदू ने शाहजहाँ के समय में 'नल दममंती कथा' नाम की एक कहानी लिखी थी।"" उस युग में धीरे–धीरे संग्राहक बुद्धि हिंदू और मुसलमानों में उत्पन्न हो चुकी थी और प्रत्येक क्षेत्र में पारस्परिक आदान–प्रदान भी आरंभ हेा गया था। संत और सूफी दोनों ही समाज परिष्कार के उद्देश्य और समन्वय की भावना को लेकर चले। दोनों एक ही वातावरण में पनप कर समान स्रोतों से प्रेरणा ले रहे थे। यही कारण है कि संत और सूफी काव्यधारा में बहुत कुछ साम्य आ गया।

संतों और सूफियों दोनों ने ही ब्रह्म की प्राप्ति के लिए गुरु अथवा पीर को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना। उनके मतानुसार वही साधक को सिद्धि तक पहुँचाने का माध्यम है। गुरु ही वहाँ तक पहुँचने का मार्ग बताता है। इस मार्ग में आने वाली विघ्न बाधाओं को दूर करने में साधक की सहायता भी करता है। संतों ने तो गुरु को गोविन्द से भी बड़ा माना हैं।

"गुरु गोबिंद दोउ खड़े, काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविंद दियो बताय।"

सूफियों ने भी गुरु की अपार महिमा का गान किया है। उनका कथन है–

"गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा, बिनु गुरु को जगत निरगुन पावा।"

उन्होंने प्रेमी के लिए एक गुरु का होना आवश्यक बताया है। सांसारिकता व्यक्ति को प्रिय तक पहुँचने नहीं देती। इसीलिए सूफी मत में गुरु की सहायता की आवश्यकता पर बल दिया गया है। उसमान ने 'चित्रावली' में गुरु की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है –

"मैं अनाथ तुम्ह नाथ गुरु, खैचहुँ मम डोर।
तैं मोर अगुआ पंथ तहं, मैं पिछलगुआ तोर।।"

संत एवं सूफी मत में गुरु ही मुक्ति प्राप्ति का कारण है। गुरु के बिना ज्ञान और ज्ञान के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

यद्यपि सूफी कवियों ने अपने काव्यों में प्रेम को अधिक महत्त्व दिया है तथापि संतों ने भी प्रेम को साधना पद्धति में काफी महत्त्व दिया है। प्रो० (डॉ०) सूर्यप्रसाद दीक्षित कृत साहित्येतिहास में उल्लिखित है –

"सन्त कवियों ने भक्ति के लिए प्रेम को अनिवार्य तथा सर्वोपरि माना है। यह प्रेम ईश्वर–प्राप्ति के लिए आवश्यक है और मानवता के कल्याण के लिए भी।" दोनों के अनुसार यह निराकार ब्रह्म प्रेम गम्य है। संतों के यहाँ प्रेम व्यक्तिगत साधनों में व्यवहृत है, जबकि सूफियों ने लौकिक प्रेम गाथाओं के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करके प्रेम की सार्वभौमिकता दिखाई है। सूफी मत में प्रेम मुख्य रूप से स्वीकृत है जबकि संतों में वह गौण रूप है। सूफियों के अनुसार ईश्वर ने प्रेम के वशीभूत होकर सृष्टि की रचना की, अतः संसार में प्रेम की स्थिति तो अनिवार्य ही है। यही कारण है कि सूफी कवि प्रेम को इतना महत्त्व देते हैं। मंझन ने कहा है – सृष्टि के मूल में प्रेम प्रविष्ट हुआ। इसके पश्चात्, सकल सृष्टि उत्पन्न हुई। सृष्टि का मूल कारण ही प्रेम है। संसार में उसी का जन्म और जीवन सफल है जिसके हृदय में प्रेम की पीर उत्पन्न हुई –

"प्रथमहिं आदि पेम प्रविसि। अस पाछे जो सकल सिरिस्टि।
उतपति सिष्टि पेम ते आई। सिष्टि रूप यह पेम संवाई।
जगत जन्मि जीवन फल ताही। पेम पीर जिम उपजा जाही।

संतों ने भी सूफियों की भाँति प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। कबीरदास कहते हैं –

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुहा, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय।"

संत और सूफी दोनों ही साधक हैं। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए साधना में संलग्न हैं। इनके साधना पथ पर विविध प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। दोनों पर हठयोग, भारतीय अद्वैतवाद, वैष्णवी अहिंसा का समान रूप से प्रभाव है। दोनों ने ही निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया है। उसे प्राप्त करने का सबको समान अधिकार है, उसमें ऊँच–नीच, जाति–पाति का कोई भेदभाव नहीं है। दोनों की सामाजिक मान्यताएँ भी प्रायः समान हैं। दोनों ही का प्रभाव निम्न वर्ग पर अधिक पड़ा। यही कारण है कि निम्नवर्गीय सामाजिक स्थिति एवं रूढ़ियों का दोनों के ही काव्य में वर्णन है। वस्तुतः संत और सूफी दोनों के साहित्य पर पूर्ववर्ती नाथों एवं सिद्धों का प्रभाव था अतः उनकी साधना पद्धति का प्रभाव इन पर पड़ना स्वाभाविक ही था।
संत और सूफी दोनों ने ही माया या शैतान को साधना–पथ में व्यवधान के रूप में स्वीकार किया है। संतों ने कनक और कामिनी को माया का प्रतीक माना है और माया को सर्वथा त्याज्य माना है। दादूदयाल कहते हैं कि कनक और कामिनी दोनों का साथ त्याग देना चाहिए अन्यथा यह संपूर्ण संसार उसी प्रकार जल कर भस्म हो जाएगा, जैसे दीपक की ज्योति पर पतंगा –

"काल कनक अरु कामिनी, परिहरि इनका संग।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यों दीपक जोति पतंग।"

सूफियों ने भी 'शैतान' को साधना पथ का व्यवधान माना है किंतु उन्होंने साधक के प्रेम की परीक्षा के लिए और उसमें दृढ़ता प्रदान करने के लिए शैतान की आवश्यकता स्वीकार की है। एक साधक पीर की कृपा से शैतान के पंजे से मुक्त हो सकता है। 'पद्मावत' में राघव चेतना शैतान के रूप में चित्रित है –
"राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू।"
संत व सूफी दोनों ही एक अर्थ में रहस्यवादी हैं। दोनों ने अव्यक्त सत्ता की प्राप्ति का संकेत किया है। संत प्रिय का साक्षात्कार अंतर्जगत में करते हैं –
'हरि संगत सीतल भया मिटी मोह की ताप।
निसि–बासर सुख निधि लहा अंतर प्रगटा आप।"
सूफियों ने भी प्रिय से साक्षात्कार किया है। जब वह मिल जाता है तो साधक के संपूर्ण पाप–ताप दूर हो जाते हैं, उसे एक नई आत्मज्योति की उपलब्धि होती है और वह चरम सात्विक उल्लास का अनुभव करता है –

"देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।।
गा अंधियार रैनि मसि छूटी। भा भिनुसार किरिन रवि फूटी।।

संत काव्य और सूफी काव्य दोनों में विरह का उन्मुक्त गान उपलब्ध होता है। दोनों में एक अनूठी कसक और वेदना है। 'यह तथ्य अपने स्थान पर स्थिर है कि सोलहवीं शताब्दी के मध्य से आज तक जितने भी हिंदुस्तानी साहित्य के बड़े और अच्छे ग्रंथ लिखे गए, वे सभी प्रथा की शृंखला या भावोच्छ्वास अथवा दोनों से .... आबद्ध हैं।'

निष्कर्ष

सूफियों का विरह विश्वव्यापी है। रवि, शशि और नक्षत्र उसी के विरह में जल रहे हैं। सूफियों के भाव के साथ चराचर जगत सहानुभूति प्रकट करता है, उसमें पादप और पक्षी तक समान रूप से भाग लेते हैं। संतों ने जगत को मिथ्या माना है। अतः प्रकृति और उनके विरह वर्णन में उपेक्षणीय रही है। यही कारण है कि उनका विरह व्यक्तिगत बनकर रह गया है। उसमें सूफियों जैसी विश्व–व्यापकता नहीं है। आत्मा की विरह–वेदना का वर्णन करते हुए वे कहते हैं –

"आँषड़ियाँ झांई पड़ी, पन्थ निहारि–निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़या, राम पुकारि–पुकारि।"

दोनों ही परमात्मा के वियोग में विरह का अनुभव करते हैं और उसके ताप से उद्विग्न रहते हैं तथापि सूफियों के विरह वर्णन अधिक हृदयग्राही हैं।